पृथ्वी घूमती है, पर सबूत?

सुशील जोशी

रोज़ सुबह सूरज पूर्व में उगता है और शाम को पश्चिम में डूबता है। रात को यदि तारों को देखें (कभी-कभी दिन में भी नज़र आते हैं) ते वे भी पूर्व से पश्चिम की ओर चलते नज़र आते हैं। और हमने मान लिया कि ये सब पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं। वैसे आज से लगभग 1500 साल पहले भारतीय खगोलशास्त्री आर्यभट ने समझाने की कोशिश की थी कि सूरज-तारे पृथ्वी की परिक्रमा नहीं करते हैं बल्कि पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने के कारण हमें ऐसा लगता है। आर्यभट के पास इसका कोई प्रमाण न था। उनके पास इस बात को समझाने के लिए रूपक ज़रूर थे। आर्यभट ने जो भी कहा हो मगर लगभग सारे खगोलशास्त्री इस बात पर सहमत थे कि सूरज, तारे, ग्रह पृथ्वी के चक्कर काटते हैं। और इसके लिए उन्हें किसी प्रमाण की आवश्यकता महसूस नहीं होती थी – प्रत्यक्षं किं प्रमाणम्। यानी सामने जो दिख रहा है उसके लिए प्रमाण की क्या ज़रूरत?

उस समय भी पृथ्वी को स्थिर मानकर जब आकाश में घूमते पिण्डों की गति का विश्लेषण किया जाता तो कई समस्याएँ सामने आती थीं। तुमने शायद सुना होगा कि शनि की गति बहुत वक्र है या मंगल ग्रह उल्टी तरफ चलने लगता है। इन विचित्र गतियों की व्याख्या करने के लिए कई जुगाड़ किए गए मगर किसी ने भी नहीं सोचा कि ये सारी समस्याएँ हमारी इस मूल मान्यता के कारण पैदा हो रही हैं कि पृथ्वी स्थिर है और बाकी सब उसके चक्कर काट रहे हैं। खासतौर से ग्रहों की गति को समझाना दिन-ब-दिन मुश्किल होता जा रहा था। हर दिन हमारे पास नए-नए आँकड़े इकट्ठे होते जा रहे थे।

निकोलस कॉपरनिकस ने 1543 में यह मॉडल प्रस्तुत किया कि इन सारी गतियों और दिन-रात की व्याख्या आसानी से हो जाती है यदि हम यह मान लें कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूम रही है। मगर उन्होंने पृथ्वी के घूमने का जो सुझाव रखा था वह उन्हीं आँकड़ों के आधार पर था जिनकी व्याख्या पृथ्वी को स्थिर रखकर भी की जा सकती थी। कॉपरनिकस ने मात्र इतना कहा कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमे और सूर्य के चक्कर लगाए तो उन आँकड़ों की व्याख्या बहुत सरलता से की जा सकती है। यानी उन्होंने एक नई मान्यता का प्रस्ताव दिया जिसकी मदद से काम आसान हो जाता है। विज्ञान में यह एक महत्वपूर्ण बात मानी जाती है कि यदि एक ही चीज़ की व्याख्या दो तरह से की जा सकती है, तो वह तरीका अपनाया जाए जो ज़्यादा सरल हो।

अलबत्ता उनके पास अपनी बात यानी पृथ्वी के धुरी पर घूमने का कोई प्रमाण न था। फिर भी सरलता के आधार पर उनका मॉडल बेहतर माना गया (सबने नहीं माना मगर काफी लोगों ने मान लिया)। पृथ्वी की घूर्णन गति (यानी अपनी धुरी पर घूमने) का प्रायोगिक प्रमाण काफी समय बाद 1851 में मिला। वैसे पृथ्वी की आकृति ने इसका परोक्ष प्रमाण उपलब्ध करा दिया था। तुमने पढ़ा ही होगा कि पृथ्वी एकदम गोल नहीं है। वह ध्रुवों पर थोड़ी चपटी है और भूमध्य रेखा पर थोड़ी फूली हुई है। इसकी व्याख्या पृथ्वी की घूर्णन गति के आधार पर की

गई है। मगर प्रायोगिक प्रमाण एक फ्रांसीसी भौतिक शास्त्री ज़्यां बर्नार्ड लियोन फूको ने प्रस्तुत किया एक दोलक (पेंडुलम) की मदद से। उनके सम्मान में इसे फूको दोलक (फूकोज़ पेंडुलम) कहते हैं। इस दोलक का सबसे पहला प्रदर्शन फरवरी 1851 में पैरिस की वेधशाला के म्यूज़ियम कक्ष में किया गया था।

मगर फूको ने जो सबसे मशहूर व प्रभावशाली दोलक बनाया वह पैरिस के एक चर्च के गुम्बद से लटकाया गया था। इसकी लम्बाई करीब 67 मीटर थी और लोलक (यानी लटकता भार) 28 किलोग्राम का था। यह दोलक स्टील के तार का बना था और इसके सिरे पर लोहे की गेंद लटक रही थी। इतना लम्बा तार लेने का मतलब यह है कि इस दोलक को एक पूरा दोलन करने में बहुत अधिक समय लगेगा। यहाँ तक तो यह किसी भी साधारण दोलक के समान ही है, बस लम्बाई बहुत ज़्यादा है।

मगर इसकी विशेष बात यह थी कि ऊपर दोलक के तार को इस तरह कसा गया था कि वह घूमने को स्वतंत्र था। मतलब यह ज़रूरी नहीं था कि वह सदा एक ही खड़े तल में दोलन करे। शुरुआत में इसकी लोहे की गेंद को एक तरफ करके दीवाल से एक धागे की मदद से बाँध दिया गया था। जब इसे दोलन शुरू करवाने का वक्त आया तो इस धागे को जला दिया गया। चाहते तो गेंद को पकड़कर रखते और छोड़ देते मगर ऐसा करने से दोलक में बहुत ज़्यादा कम्पन होते। इसलिए इसे छोड़ने के लिए धागे को जलाया गया।

सबने देखा कि यह दोलक एक ही दिशा में दोलन नहीं करता रहा। यह लगातार घड़ी की दिशा में अपनी दिशा बदलता जा रहा था – प्रति घण्टे 11 अंश। इसे वापिस अपनी मूल दिशा में आने में 32 घण्टे 42 मिनट लगे थे। तमाम दर्शक इस बात के साक्षी थे कि दोलक लगातार इसी दर से घूमता रहा, दोलन करता रहा। आखिर ऐसा क्यों हुआ?

वास्तविकता यह है कि दोलक तो उसी दिशा में दोलन करता रहता है; मगर नीचे पृथ्वी घूम जाती है जिससे दोलक की दिशा लगातार बदलती नज़र आती है। है ना, चतुर प्रयोग! और कितना सरल! यदि हमारे पास भी ऐसी कोई जगह हो जहाँ एक दोलक को इस तरह बाँधा जा सके कि वह घूमने को स्वतंत्र हो तो हम भी पृथ्वी को घूमता हुआ देख सकेंगे। हाँ, प्रयोग में कई सावधानियाँ रखनी होंगी। जैसे, उस जगह का तापमान नहीं बदलना चाहिए, हवा के झोंके वगैरह नहीं लगने चाहिए वगैरह।

यहाँ एक-दो रोचक बातें हैं। एक बात तो यह है कि पृथ्वी की घूर्णन गति हर जगह एक-सी नहीं होती। इस वजह से फूको-दोलक को अलग-अलग जगह लटकाने पर अलग-अलग परिणाम मिलते हैं। उदाहरण के लिए – ध्रुवों पर यह दोलक एक दिन में पूरा चक्कर लगाकर वापिस उसी दिशा में आ जाता है। जैसे-जैसे हम ध्रुवों से दूर यानी भूमध्य रेखा की ओर बढ़ते हैं, वैसे-वैसे इसकी गति धीमी पड़ती जाती है। और भूमध्य रेखा पर यह अपनी दिशा बिलकुल भी नहीं बदलता। ध्रुव से लेकर भूमध्य रेखा के बीच इसे एक चक्कर पूरा करने में लगने वाला समय बढ़ता जाता है।

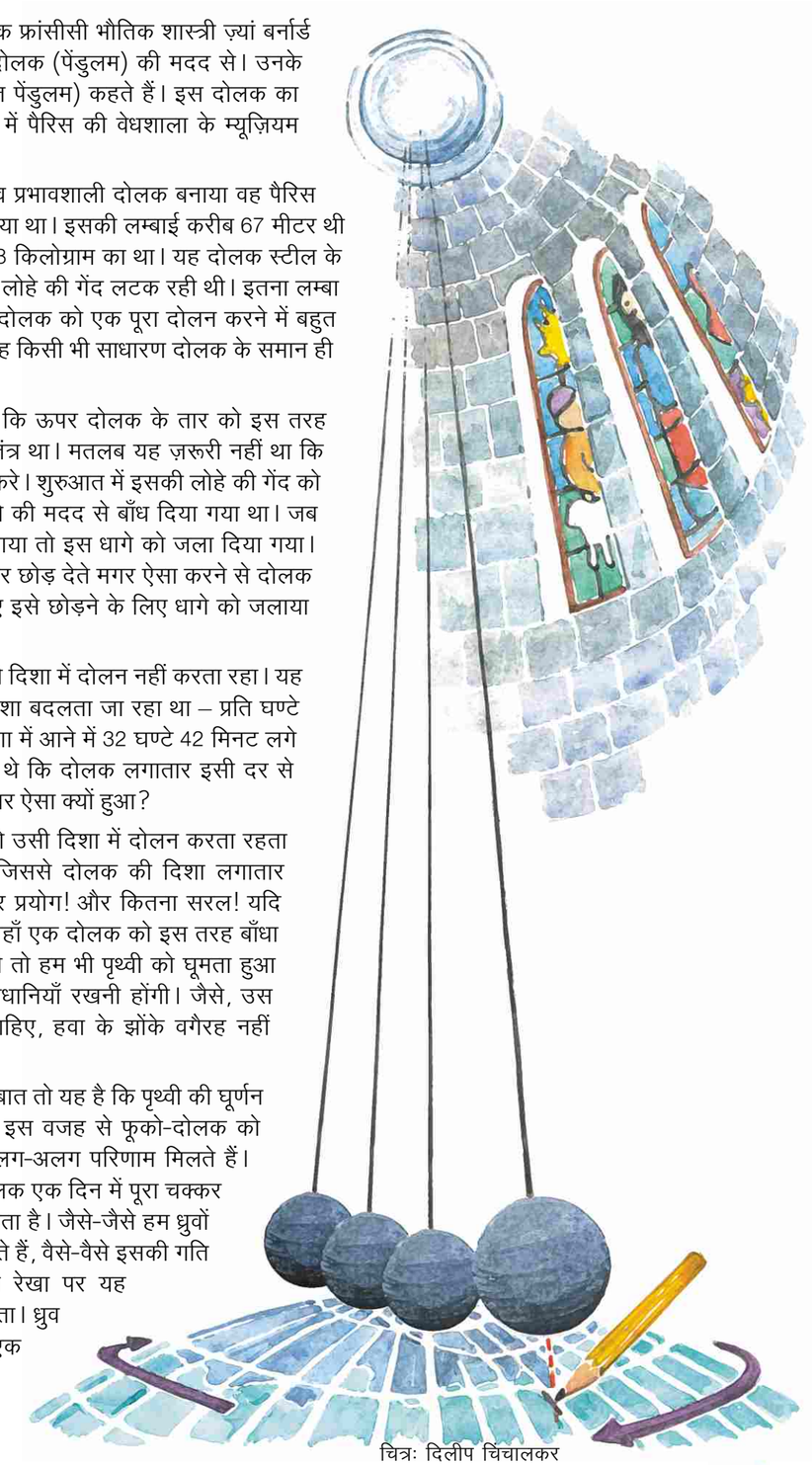

चित्र: दिलीप चिंचालकर

दूसरी रोचक बात ऐसी है कि जिसकी पुष्टि होना अभी बाकी है। आम तौर पर एक जगह पर लगे फूको-दोलन के घूमने की रफ्तार काफी स्थिर रहती है। मगर 1954 में मॉरिस एलैस नामक वैज्ञानिक द्वारा किए गए एक प्रयोग के दौरान देखा गया कि सूर्य ग्रहण के समय फूको-दोलक की गति में परिवर्तन होता है। वह प्रयोग 30 दिन चला था और बीच में सूर्य ग्रहण आया था – देखा गया कि सूर्य ग्रहण के समय मात्र 14 मिनट में दोलक पूरे 13.5 डिग्री घूम गया। 1959 में सूर्य ग्रहण के दौरान उसी वैज्ञानिक ने फिर वही असर देखा। बाद में किए गए प्रयोगों में कोई निश्चित परिणाम नहीं मिले हैं। अधिकांश मामलों में तो दोलक की घूर्णन गति में कोई मापने योग्य अन्तर नहीं आया। तो अभी यह एक पहेली है कि क्या एलैस के परिणाम सही हैं और यदि हैं तो ऐसा क्यों है।

अब तो इस तरह के "फूको-दोलक" दुनिया भर में कई प्रयोगशालाओं में लगे हैं जहाँ इनका अवलोकन किया जा सकता है। भारत में दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, इंटरयुनिवर्सिटी सेंटर फॉर एस्टोरॉनॉमी एण्ड एस्ट्रोफिज़िक्स (पुणे), तेल भवन, तेल व प्राकृतिक गैस आयोग (देहरादून) और भौतिकी अनुसंधान प्रयोगशाला (अहमदाबाद) में ऐसे दोलक लगे हैं।

प्रस्तुतिः कार्तिक शर्मा

तुम भी बनाओ